International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(5): 01-03

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(5): 01-03
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 01-07-2017
Accepted: 02-08-2017

डॉ0 संजीव कुमार
प्रवक्ता–संस्कृत मौलिक सिद्धान्त विभाग विवेक कॉलेज ऑफ आयुर्वेदिक साइंसेस एण्ड हॉस्पिटल, बिजनौर (उ0 प्र0), भारत

Correspondence
डॉ0 संजीव कुमार
प्रवक्ता–संस्कृत मौलिक सिद्धान्त विभाग विवेक कॉलेज ऑफ आयुर्वेदिक साइंसेस एण्ड हॉस्पिटल, बिजनौर (उ0प्र0), भारत

भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा प्रणीत प्रश्नोत्तर श्रावकाचार में वर्णित 'दान' की महत्ता

डॉ0 संजीव कुमार

प्रस्तावना

दान का लक्षणः पाँच सूना रूप पापकार्यों से रहित आर्य पुरुषों को नौ पुण्यों के साथ शुद्ध सप्त गुण से संयुक्त श्रावक के द्वारा जो आहारादि देने के रूप में आदर–सत्कार किया जाता है, वह दान कहलाता है –

नवपुण्यैः प्रतिपत्तिः सप्तगुणसमाहितेन शुद्धेन।
पन्चसूनारम्भाणामार्याणामिश्यते दानम्।।

ओखली, चक्की, चौका–चूल्हा, जलघटी और बुहारी–इन पाँच के आरम्भ को पन्चसूना कहते है। जो इन से रहित है, वही पात्र कहलाने के योग्य है। साधु आहारार्थ द्वार के आगे जाने पर उन्हें पडिगाहन, ऊँचे आसन पर बैठाना, पाद प्राक्षालन करना, अर्चन–पूजन करना, प्रणाम करना, मन शुद्ध रखना, वचन शुद्ध बोलना, काय शुद्ध रखना और भोजन की शुद्धि रखना, ये नौ पुण्य हैं, जो कि नवधा भक्ति के नाम से प्रसिद्ध हैं। श्रद्धा, सन्तोष, भक्ति, विज्ञान, अलुब्धता, क्षमा और सत्य–ये दाता के सात गुण होते हैं। इन गुणों से युक्त दाता को पन्चसूना से रहित साधुओं के लिए नवधा भक्ति से आहार आदि के देने को दान कहते हैं।[1]

जिससे अपना भी कल्याण हो और अन्य (मुनियों) के रत्नत्रय–सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की उन्नति हो, इस तरह जो अपने और दूसरों के उपकार के लिए दिया जाता है, उसे ही दान कहते है। यही सुदान के अन्तर्गत रखा जा सकता है –

आत्मनः श्रेयसेऽन्येङ्गां रत्नत्रयसमृद्धये।
स्वपरानुग्रहायेत्थं यत्स्यात्तद्दानमिश्यते।।[2]

अनुग्रह के लिए अपनी वस्तु का त्याग करना दान है। विधि, द्रव्य, दाता और पात्र की विशेषता से उसकी अर्थात् दान की विशेषता है। स्त्री, पुरुष, कुटुम्ब, घर, धन, दौलत आदि सब मुझसे भिन्न हैं, तत्त्वतः मैं इनका स्वामी भी नहीं हूँ। यह सब नदी–नाव का संयोग है। न तो कोई साथ में आया है, और न कोई साथ में जायेगा। ये इसी प्रकार के विचार सुनने को तो बहुँत मिलते है। इसी प्रकार अपने पुत्र आदि के लिए सर्वस्व का त्याग करते हुए भी प्राणी देखे जाते हैं, परन्तु ऐसे प्राणी विरले हैं जो इनमें मोह को संसार का कारण जानकर इनका त्याग करने की इच्छा से ऐसा उद्यम करते हैं जिससे इनका उपयोग मोक्षमार्ग के निमित्त रूप से किया जा सके। सच पूछा जाये तो त्यागधर्म जीवन के समग्र सद्गुणों का मूल है। गृहस्थ अपने जीवन में जितने ही अच्छे ढंग से इसका उपयोग करता है, मानवमात्र में सदाचार की उतनी ही वृद्धि होती है। यद्यपि इससे आत्मिक गुणों का विकास तो होता ही है, परन्तु धर्म मर्यादा को बनाये रखना भी इसका फल है। गृहस्थ न्यायपूर्वक अपनी आवश्यकतानुसार जो कुछ कमाता है उसमें से सद्गुणों की प्रवृत्ति चालू रखने के लिए कुछ हिस्सा खर्च करना दान है, इससे दान देने वाले का हितसाधन तो यह है कि इससे उसकी लोभवृत्ति कम होती है और आत्मा त्याग की ओर झुकता है तथा दान लेने वाले का हित साधन यह है कि इससे जीवन यात्रा में मदद मिलती है, जिससे वह भले प्रकार आत्मकल्याण कर सकता है। इसके अतिरिक्त सबसे बड़ा हितसाधन मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति को चालू रखना है। यह वर्तमान व्यवस्था के रहते हुए दान के बिना सम्भव नही हैं, इसलिए जीवन में दान का बड़ा महत्त्व है।

वर्तमान समय में जो देते हैं वे ऐसा मानते हैं कि हमने बहुँत बड़ा काम किया है। इसमें सन्देह नहीं कि यह काम बहुँत ही महत्त्व का है, परन्तु इसका महत्त्व तब है जब देने वाले के मन में अहंकार न हो। अहंबुद्धि के हो जाने पर देने पर भी दान का फल नहीं मिलता। तथ्य यह है कि देने वाला कुछ देता ही नहीं, क्योंकि जो पर है उसमें वस्तुतः वह दान व्यवहार करने का अधिकारी ही नहीं और जो स्व है उसका वह कभी भी त्याग नहीं कर सकता। संसार में ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं जो अपना कुछ छोड़ता हो और दूसरों का कुछ लेता हो। फिर भी दानादान व्यवहार तो होती ही है, सो इसका कारण केवल निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है। यह हो सकता है कि यह सम्बन्ध जिस रूप में आज है कल न भी रहे।

यह तो हम प्रत्यक्ष से ही देखते हैं कि बहुत से देशों ने वर्तमान कालीन आर्थिक व्यवस्था का सर्वथा ध्वंस कर दिया है और वे इस बात पर तुले हुए हैं कि समूचे विश्व में यह आर्थिक व्यवस्था नहीं रहने दी जायेगी। भविष्य में क्या होगा यह तो विश्वासपूर्वक कहना कठिन है, परन्तु इतना निश्चित है कि मुट्ठी भर लोगों को छोड़कर अधिकतर लोग पुरानी आर्थिक व्यवस्था से ऊब गये हैं, वे इसमें परिवर्तन चाहते हैं।

देखना यह है कि आखिरकार ऐसा क्यों हो रहा है। बहुत कुछ विचार के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि यह सब मनुष्यों की वैयक्तिक कमजोरी का ही फल है। जहाँ सहयोग प्रणाली के आधार पर प्रत्येक मनुष्य को व्यक्तिगत आर्थिक स्वतन्त्रता मिली, वहीं पर अपने लोभ का संवरण नहीं कर सका। उसे इसका भान नहीं रहा कि जीवन में अर्थ की आवश्यकता जिस प्रकार मुझे है उसी प्रकार दूसरे को भी है। मुझे इतना ही सन्चय करने का अधिकार है जितने की मुझे आवश्यकता है। इससे अधिक का सन्चय करना पाप है। जीवन में इस वृत्ति के जीवित न रहने के कारण ही आर्थिक दृष्टि से समाजवादी मनोवृत्ति को जन्म मिला है और अब तो यह वृत्ति प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में घर करती जा रही है। जो साधनहीन हैं, वे तो पुरानी आर्थिक व्यवस्था में आये हुए दोष को समझ ही रहे हैं, किन्तु जो साधन सम्पन्न हैं, वे भी उसके इस दोष को समझ रहे है। फिर भी वे अपनी नियत में संशोधन करने के लिए तैयार नहीं हैं, यही आश्चर्य की बात है। आगे जो होने वाला होगा सो तो होगा ही। उसे कोई रोक नहीं सकता, परन्तु तत्काल केवल इस बात का विचार करना है कि मनुष्य का जीवन केवल अर्थप्रधान बन जाने पर अध्यात्मजीवन की रक्षा कैसे की जा सकेगी? पूर्वकालीन ऋषियों ने अपने अनुभव के आधार पर यह उपदेश दिया था कि–

जीवन में यह मानकर चलना चाहिए कि अपने आत्मा के सिवा अन्य सब पदार्थ पर हैं। इसलिए सबसे मोह छोड़कर जिसके जीवन में पूर्ण स्वावलम्बन की वृत्ति जागृत हो ऐसे मार्ग पर स्वयं चलना चाहिए और दूसरों को भी इसी मार्ग से ले जाने का प्रयत्न करना चाहिए। जीवन में पूर्ण स्वावलम्बी वृत्ति का आ जाना ही मोक्ष है और इसे प्राप्त करने का मार्ग ही मोक्षमार्ग है।

साथ ही उन्होंने यह भी कहा था कि यद्यपि सब मनुष्यों के जीवन में इस वृत्ति का जागृत होना कठिन है, इसलिए जो मनुष्य पूर्ण रूप से इस वृत्ति को अपने जीवन में नहीं उतार सकते हैं, उन्हें इतना अवश्य करना चाहिए कि वे एक तो आवश्यकता से अधिक सन्चय न करें। दूसरे अपनी आवश्यकता के अनुसार सन्चित किये गये द्रव्य में से भी वे कुछ का त्याग करें और इस तरह अपनी आवश्यकताओं को कम करते हुए उत्तरोत्तर जीवन में स्वावलम्बन को उतारने का अभ्यास करें।[3]

दान के भेदः प्रश्नोत्तर श्रावकाचार के अनुसार दान के चार भेद हैं – 1– आहारदान, 2– औषधदान, 3– शास्त्रदान, 4– वसतिका दान।[4]

1–आहारदानः नवधा भक्ति करने वाले और सातों गुणों से सुशोभित गृहस्थों को भक्तिपूर्वक उत्तम पात्रों के लिए प्रासुक, हिंसादिक समस्त पापों से रहित योग्य सुख देने वाला, लोक निदा से रहित और समस्त रोगों को दूर करने वाला आहारदान देना चाहिए।[5]

2–ओषधदानः उत्तम गृहस्थों को किसी मुनिराज को रोगी जानकर उस रोग को शान्त करने के लिए उन्हें औषधि दान देना चाहिए।[6]

3–शास्त्रदानः इसी प्रकार बुद्धि और संवेग को धारण करने वाले ज्ञानी मुनियों के लिए विवेकी गृहस्थों को ज्ञानदान देना चाहिए तथा समस्त तत्त्वों के कथन से भरे हुए, लोक आलोक को प्रकाशित करने वाले भगवान् जिनेन्द्र देव के मुख से उत्पन्न हुए, गौतमादि गणधरों के द्वारा गूँथे हुए गृहस्थ व मुनियों के चारित्र को निरूपित करने वाले, द्रव्यों के गुण पर्यायों के द्वारा होने वाले भेद–प्रभेदों को प्रकट करने वाले तथा पूर्वा पर विरूद्ध आदि दोषों से रहित ऐसे शास्त्र अपना उपकार करने के लिए और पात्रों का अज्ञान दूर करने के लिए अवश्य देना चाहिए। यह ज्ञान दान अथवा शास्त्रदान गृहस्थ भी मुनियों के लिए करते हैं तथा मुनि भी परस्पर एक दूसरे के लिए करते है।[7]

4–वसतिकादानः उत्तम पात्रों को धर्म ध्यान आदि की सिद्धि के लिए गृहस्थों को ऐसी वसतिका का दान देना चाहिए जिसमें शीत वायु आदि न जा सके, जो सूने घर के रूप में हो या सूने मत के रूप में हो, जिसमें सूक्ष्म जीवों का निवास न हो, जो कारित आदि दोषों से रहित हो, स्वभाव से बनी हो, अच्छी हो और निर्मल हो। ऐसी वसतिका का दान मुनियों के लिए अवश्य देना चाहिए।[8]

इन चारों दानों (आहार दान, औषधदान, शास्त्रदान और वसतिकादान) के अतिरिक्त डॉ0 वशिष्नरायन सिन्हा ने दान के दस भेद बतायें हैं –

1–अनुकम्पादानः किसी दीन–दुःखी तथा अनाथ को दया करके जो कुछ भी दानस्वरूप दिया जाता है, उसे अनुकम्पा दान कहते हैं।

2–संग्रहदानः आपत्ति के समय अपनी सहायता के उद्देश्य से दूसरे को जो कुछ दिया जाता है, वह संग्रहदान कहलाता है। इसमें दाता का स्वार्थ निहित होता है। ऐसे दान में मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती।

3–भयदानः राजा, मंत्री, पुरोहित, राक्षस, पिशाच आदि के ड़र से दान करना अभयदान कहलाता है।

4–कारुण्यदानः पुत्र–पिता आदि प्रियजनों की मृत्यु से शोक पैदा होता है, उससे अत्यधिक करूणा होती है, वैसी स्थिति में पुत्र आदि के नाम से कुछ दान कर देना ही कारूण्य दान कहलाता है।

5–लज्जादानः लज्जावश जो दान दिया जाये वह लज्जादान होता है। किसी छोटी या बड़ी सभा में बैठे हुए व्यक्ति से कोई याचक याचना कर देता है, तब वास्तव में देने की इच्छा न होने पर भी व्यक्ति कुछ दे देता है ताकि समाज के लोग उसे कंजूस न कहे या कठोर दिलवाला न कहें।

6–गौरवदानः यश प्राप्ति के लिए गर्वपूर्वक धन का त्याग करना गौरवदान कहलाता है।

7–अधर्मदानः जिस दान से धर्म की पुष्टि न होकर अधर्म की पुष्टि होती है, उसे अधर्मदान कहते है। हिंसा, झूठ, चोरी आदि में रत रहने वालों को कुछ देना अधर्मदान है।

8–धर्मदानः धर्म के लिए दिया गया दान धर्मदान कहलाता है। समभावी मुनियों को, जिनके लिए सोना और राख में कोई अन्तर नहीं होता, दान देना धर्मदान की श्रेणी में आता है।

9–करिष्यतिदानः भविष्य में प्रत्युपकार पाने के उद्देश्य से किया गया दान करिष्यतिदान कहलाता है।

10–कृतदानः पहले के किये गये उपकार से उऋण होने के लिए जो दान दिया जाता है, वह कृतदान के नाम से सम्बोधित होता है।[9]

यद्यपि सभी दान एक हैं तथापि उनके फल में अन्तर देखा जाता है। जिसका मुख्य कारण विधि, द्रव्य, दाता और पात्र की विशेषता है। इनकी न्यूनाधिकता से दान के महत्त्व में न्यूनाधिकता आती है, यह इस कथन का तात्पर्य है। अब इन चारों की विशेषता का वर्णन करते हैं –

1–विधि की विशेषताः पात्र के अनुसार प्रतिग्रह, उच्चस्थान, अंघ्रिक्षालन, अर्चा, आनति, मनशुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि और अन्नशुद्धि इनके क्रम को भली प्रकार से जानकर आहार देना विधि की विशेषता है। इसमें देशकाल और लेनेवाले की शक्ति व प्रकृति आदि का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है।

2–द्रव्य की विशेषताः दान में दी जाने वाली वस्तु कैसी है, इत्यादि बातों का विचार द्रव्य की विशेषता में किया जाता है। आहार आदि देते समय इसका अवश्य ध्यान रखना चाहिए, कि जिसे आहार दिया जा रहा है, इसका वह कहाँ तक उपकारक होगा। संयत और गृहत्यागी को गरिष्ठ और मादक आहार तो देना ही नहीं चाहिए। आहार ऐसा हो जिससे उसे अपने गुणों के विकास करने में सहायता मिले।

3–दाता की विशेषताः भक्ति श्रद्धा, सत्त्व, तुष्टि, ज्ञान, क्षमा और अलौल्य ये दाता के सात गुण हैं। जितने अंश में ये दाता में विद्यमान होंगे, उससे दाता का उतना ही लाभ है। इसके अतिरिक्त दाता में असूया या तिरस्कार का भाव न होना भी आवश्यक है तथा दान देने के बाद विषाद न करना और अधिक जरूरी है, क्योंकि ऐसा करने से इनके निमित्त से बहुत सन्चित सद्गुणों का नाश हो जाता है।

4–पात्र की विशेषताः पात्र के तीन भेद हैं – उत्तम, मध्यम और जघन्य। उत्तम पात्र मुनि है। मध्यम पात्र श्रावक है और जघन्य पात्र अव्रती सम्यग्दृष्टि हैं। इस प्रकार ये विधि, द्रव्य, दाता और पात्र हैं। ये जैसे होते हैं, उनके अनुसार दान के फल में विशेषता आती है। इसलिये इन सबकी सम्हाल करना उचित है।[10]

वैदिक काल में दान की महत्ताः 'मनु' के अनुसार – त्रेता युग, द्वापर युग एवं कलियुग में धार्मिक जीवन के प्रमुख रूप क्रम से तप, आध्यात्कि, यज्ञ एवं दान है। मनु ने ग्रहस्थाश्रम की महत्ता गायी है और कहा है कि अन्य आश्रमों से यह श्रेष्ठ है, क्योंकि इसी के द्वारा अन्य आश्रमों के लोगों का परिपालन होता है। ऋग्वेद में तीन स्थानों पर आया है – ''जो (गायों या दक्षिणा) का दान करता है वह स्वर्ग में उच्च स्थान प्राप्त करता है, जो अश्व दान करता है वह सूर्य लोक में निवास करता है, जो स्वर्ण का दान करता है, वह देवता होता है, जो परिधान का दान करता है, वह दीर्घ जीवन का लाभ करता है। अश्व (घोड़ा) की दान की महत्ता में अन्तर पड़ता चला जा रहा है। पहले उसका स्थान गाय के बाद था, किन्तु कालान्तर में अश्व के दान की महिमा घट गई। तैत्तिरीय संहिता का कहना है – जो अश्व दान लेता है उसे वरुण पकड़ता है, अर्थात् वह जलोदर या शोथ से ग्रस्त हो जाता है। काठक संहिता में भी आया है कि अश्व का दान नहीं लेना चाहिएँ, क्योंकि इसके जबड़ों में दो दन्त–पंक्तियाँ होती है। जबकि गौतम ने अपराधों के प्रायश्चित्त के लिए अश्व दान की चर्चा की है। ऋग्वेद ने विविध प्रकार के दानों एवं दाताओं की प्रशस्ति गायी है। गायों में गो–दान की महत्ता विशेष रूप से प्रचलित है। दानों में गायों, रथों, अश्वों, ऊँटों, नारियों भोजन आदि का विशिष्ट उल्लेख हुआ है। तैत्तिरीय संहिता का कहना है कि व्यक्ति जब अपना सर्वस्व दान कर देता है तो वह भी तपस्या ही है। ऐतरेय ब्राह्मण ने सोने, पृथ्वी एवं पशु के दान की चर्चा की है।[11]

दान का समयः दान करने के उचित कालों के विषय में बहुत से नियम बने हुए हैं। प्रतिदिन के दान–कर्म के अतिरिक्त अन्य विशिष्ट अवसरों के दान की व्यवस्था करते हुए धर्मशास्त्रकारों ने लिखा है कि प्रतिदिन के दान कर्म से विशिष्ट अवसरों के दान–कर्म अधिक सफल एवं पुण्यप्रद माने जाते है। वन पर्व में आया है कि – अमावस्या के दिन, तिथिक्षय में विषुव के दिन (जब रात–दिन बराबर हों) एवं व्यतिपात् के दिन का दान क्रम से सौ गुणा, सहस्र गुणा, लाख गुणा एवं अक्षय फल देने वाला है। विष्णु धर्म सूत्र ने भी वर्षा की पूर्णिमाओं के दिन विभिन्न प्रकार के पदार्थों के दान करने से उत्पन्न फलों की चर्चा की है।[12]

अस्वीकार के योग्य दानः कुछ पदार्थों को दान के रूप में स्वीकार करना वर्जित माना गया है। श्रुति ने दो दन्तपंक्तियों वाले पशुओं को दान रूप में ग्रहण करना वर्जित माना है। वशिष्ठ धर्मसूत्र ने ब्राह्मणों के लिए अस्त्र–शस्त्र, विषैले पदार्थ एवं उन्मत्तकारी पदार्थों का ग्रहण वर्जित ठहराया है। मनु का कहना है कि अविद्वान् ब्राह्मण को सोने, भूमि, अश्वों, गाय, भोजन, वस्त्र, तिल एवं घृत का दान नहीं लेना चाहिए, यदि वह लेगा तो लकड़ी की भाँति भस्म हो जायेगा।[13]

हेमाद्रि ने ब्रह्मपुराण को उद्धृत कर लिखा है कि ब्राह्मण को चाहिए कि वह भेड़ों, अश्वों, बहुमूल्य रत्नों, हाथी, तिल एवं लोहे का दान न ले, यदि ब्राह्मण मृगचर्म या तिल स्वीकार करता है तो वह पुनः पुरुष में नहीं जन्मेगा और वह जो मरे हुए की शय्या एवं परिधान ग्रहण करता है, वह नरक में जायेगा।[14]

इसलिए मनुष्य को दान करना एवं दान लेना बड़ा सोच–विचार कर करना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. स्वामी समन्तभद्रः रत्नकरण्ड श्रावकाचार – 7/113–14
2. आ0 सोमदेवः यशस्तिलकचम्पूगत उपासकाध्ययन–734
3. अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम्।। आ0 गृद्धपिच्छाचार्य : तत्त्वार्थसूत्र 7/38 (सिद्धान्ताचार्य पं0 फूलचन्द शास्त्री द्वारा लिखित हिन्दी व्याख्या)
4. आ0 सकलकीर्ति : प्रश्नोत्तर श्रावकाचार – 20/3
5. वही 20/23–24
6. वही 20/25
7. वही 20/26–29
8. वही 20/30–31
9. डॉ0 वशिष्ठनारायण सिन्हा : जैनधर्म में अहिंसा, पृ0 190–91
10. विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषत्तद्विशषः।। आ0 गृद्धपिच्छाचार्यः तत्त्वार्थ सूत्र 7/39 (सि0पं0 फूलचन्द शास्त्री द्वारा लिखित हिन्दी व्याख्या)
11. डॉ0 पाण्डुरङग वामन काणेः धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग–1, पृ0 447–48
12. वही पृ0 453
13. वही पृ0 453
14. हेमाद्रि : ब्रह्मपुराण, पृ0 57